



उपसंहार



उपसंहार

भारत में मौर्य सत्ता के अभ्युदय के साथ-साथ एक संगठित एवं सर्वांगपूर्ण राज्य इकाई का अस्तित्व हमें दिखाई पड़ता है। यह कदापि आश्चर्यजनक नहीं है अपितु मानव विकास की अपरिहार्य अवस्था है। आश्चर्यजनक यह है कि सुगठित राज्य तन्त्र के विभिन्न अवयवों एवं अंगों-उपांगों का निरूपण करने वाला 'अर्थशास्त्र' जैसा राजनीतिक ग्रन्थ मौर्य सत्ता के समकालीन विचारकों ने प्रतिपादित किया।

मौर्य युग में राज्य के सुगठित एवं नियोजित आर्थिक गतिविधियों का प्रादुर्भाव हुआ। किसी भी राज्य की मजबूती के लिये आवश्यक है कि उसके पास निर्विघ्न आय के स्रोत हो, उसकी वसूली सुव्यवस्थित एवं नियमानुसार हो और राज्य के कोषागार में निरन्तर जमा होती रहे। कौटिल्य ने उल्लेख किया है कि राजा को ? राजस्व को संग्रहित करने वाले कर्मचारियों पर सतर्क दृष्टि रखनी चाहिये। ये लोग राज्य के धन का उसी प्रकार व्यपहरण कर लेते हैं जिस प्रकार मछली जल कब पीती है यह पता नहीं चलता। राज्य के राजस्व के व्यवहरण पर इतनी सावधानी पूर्वक दृष्टि रखने का

परामर्श मौर्य युग से ही प्रकाश में आया था। जो आज भी पूर्णतः प्रासंगिक है।

मौर्य कालीन आर्थिक संगठन एवं नियोजन में कृषि का महत्त्व सर्वाधिक था। मौर्यों ने कृषि सहित सभी प्रमुख उद्योगों को राज्य के प्रत्यक्ष नियंत्रण में ले लिया था। कृषि को व्यवस्थित ढंग से कराने एवं इसके उत्पाद में वृद्धि को कौटिल्य ने राजा के कर्तव्यों तथा दायित्वों में शामिल किया था। मौर्य युगीन अर्थव्यवस्था में कृषि की प्रमुखता मेगरथनीज एवं कौटिल्य के विवरणों से प्रमाणित हैं। मेगरथनीज के अनुसार भारतीय समाज के दूसरे वर्ग में कृषक आते हैं, जिनकी संख्या अन्य सभी वर्गों के लोगों से बहुत अधिक है।

भारत को कृषि प्रधान देश कहा जाता है। मौर्य युग में भी भारत के आर्थिक जीवन का मुख्य आधार खेती ही थी। इस युग में गेहूँ, जौ, बाजरा, दलहन, तिल, गन्ना (ईख), तरबूज, खरबूजा, लौकी इत्यादि खाद्यान्नों की खेती की जाती थी। आम, अमरूद, अंगूर, नींबू, आंवला, बेर, जामुन, कटहल, अनार इत्यादि फलों की खेती की जाती थी। इसके अतिरिक्त अन्य खाद्यान्नों, फल, शाक, कन्द-मूल इत्यादि की फसलें उगाई जाती थीं। इनमें से विविध फसलों को मौसम के अनुसार रबी, खरीफ तथा वर्षा के जल की बूँदे पड़ने के पश्चात् बोया जाता था। राज्य द्वारा कृषि कर्म एवं कृषि कार्य में संलग्न कृषकों, मजदूरों, दासों इत्यादि को विविध सुविधाएँ एवं

संरक्षण प्रदान किया जाता था तथा कृषि उत्पाद पर विविध प्रकार के विभिन्न मात्रा में कर एवं राजस्व वसूल किया जाता था जिससे राज्य को पर्याप्त आय होती थी। तथापि राजकोष सुदृढ़ एवं राज्य द्वारा अन्नों का कोष्ठागारों में भण्डारण भी किया जाता था जिसका उपयोग अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अकाल इत्यादि विपत्ति काल में किया जा सके।

मौर्य काल में आर्थिक संगठन एवं नियोजन में भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध को मुख्य माना जाता था। भूमि अर्थ उत्पत्ति का महत्त्वपूर्ण साधन मानी जाती थी। मौर्यकाल में अधिक उत्पादन देने वाली, अर्थ प्राप्ति में सहायक, सुख समृद्धि की दायक रत्नगर्भा भूमि को ही राज्य का मुख्य आधार माना गया था। वन सम्पदा, खनिज सम्पदा और जलसम्पदा की गणना भूमि के अन्तर्गत की जाती है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में वनो, खनिज पदार्थों और भूमिस्थ निधि पर राजा का अधिकार बताया गया है। भूमि राज्य की सम्पदा थी। भूमि विक्रय और उसे बन्धक रखना उपयोगकर्ता के हाथ में नहीं था।

श्रम उत्पादन का मूलभूत साधन था। मौर्यकाल में श्रम का अभाव नहीं था। गृहपतियों के पास काम करने वालों में भागीदार, कर्मकार, भूतक, कुटुम्बी, सेवक, संदेशवाहक और दास-दासियों का उल्लेख मिलता है। कर्मकर दीर्घकाल के लिए अनुबन्धित होकर अपने स्वामी के खेतों में हल चलाते, बीज बोते और खेतों की रक्षा

करते थे। समर्थ लोग अपने कामों के लिए कर्मकारों, भागीदारों और दासों की नियुक्ति करते थे।

इस काल में भारतीय कृषक खेतों की सिंचाई के लिये केवल वर्षा पर ही निर्भर नहीं रहते थे। सिंचाई के अन्य भी अनेक साधन भारत में विद्यमान थे। राजा भी कृषि पर ध्यान देता था और सिंचाई की व्यवस्था के लिए तत्पर रहता था। कौटिलीय अर्थशास्त्र में इस विषय पर विषद् रूप से विचार किया गया है, कि किस प्रदेश में कितनी वर्षा होती है, और मेघों के रंग रूप आदि से किस प्रकार वर्षा की कमी या अधिकता का अनुमान किया जा सकता है। वायु की गति, नक्षत्रों की स्थिति और मेघों के रंग रूप आदि को दृष्टि में रखकर कृषि के नियुक्त राजकीय अधिकारी 'सीताध्यक्ष' वर्षा का अनुमान करता था, और उसी के अनुसार खेतों की सिंचाई की व्यवस्था करता था।

यद्यपि नहर, कूप आदि द्वारा भी सिंचाई का प्रबन्ध किया जाता था। मौर्य युग में सिंचाई की व्यवस्था के लिए राजकीय आमदनी का एक अंश खर्च किया जाता था। यह व्यय प्रधानतया सहायता के रूप में होता था। जो व्यक्ति अपनी भूमि पर स्थित तटाकों (तड़ागों) पर बाँध बांध कर सिंचाई की व्यवस्था करते थे, वे राजकीय सहायता के अधिकारी थे।

मौर्य काल में कृषि कर्म भी संगठित एवं योजनाबद्ध ढंग से किये जाने का संकेत मिलता है। तभी तो विविध प्रकार के फसलों को खेतों एवं भूमि में उगाया जाता था। यह तत्कालीन कृषि की वैज्ञानिक पद्धति की प्रगति की ओर भी अप्रत्यक्षतः सांकेतिक है।

मौर्यकालीन संगठन एवं नियोजन का दूसरा प्रारम्भिक आधार पशुपालन था। आर्थिक संयोजन में पशुओं का महत्वपूर्ण स्थान था। पशुओं को सम्पत्ति के रूप में स्वीकार किया गया था। इस काल के आर्थिक जीवन में पशुओं का कई दृष्टियों से महत्व था। अन्न, बल, सौन्दर्य एवं सुख प्रदान करने में पशुओं की महत्ता स्वीकार की गयी थी। गाय-भैंस, दूध एवं मांस के लिए पाले जाते थे और भेड़-बकरी, दूध, मांस, खाल तथा ऊन के लिए। बैल, अश्व, गधे, खच्चर, गधे, ऊँट आदि भारवाही पशु थे और गाड़ी अथवा रथ भी खींचते थे। बैल और भैंसे हल जोतते थे। हाथी एवं घोड़े युद्ध तथा सवारी के काम आते थे। कुत्ते रखवाली के लिए पाले जाते थे और शिकार करने में भी सहायता करते थे। पशुओं की सुरक्षा, चिकित्सा और कल्याण पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। बड़े पशुओं के अपहरण (चोरी) के लिए 200 से 500 पण तक के अर्थदण्ड का प्रावधान किया गया था। दूसरे राजा अथवा वन में रहने वाले लोगों द्वारा चुराए गए चौपायों को बरामद कर उनके मालिक को देना राजा का दायित्व बताया गया है।

इस प्रकार ऐसा संकेत मिलता है कि मौर्य युग में पशुओं एवं पशुधन के महत्व को भली-भाँति समझा गया था और पशुपालन पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। कौटिल्य के विचारों से भी प्रमाणित होता है कि संगठित एवं सुनियोजित स्वरूप में पशुपालन व्यवसाय से पर्याप्त आय होती थी तथापि कृषि सम्बन्धी कार्य (कृषि व्यवसाय) पशुपालन पर ही निर्भर प्रतीत होता है। कृषि कार्य के अतिरिक्त युद्ध, भारवाहन, सवारी, व्यापार, यातायात सुरक्षा इत्यादि प्रयोजनों के क्रियान्वयन में विभिन्न पशुओं का महत्वपूर्ण उपयोग होता था।

मौर्य कालीन औद्योगिक संगठन एवं नियोजन में उद्योगों का विशेष महत्व था। उद्योग उन्नत दशा में थे। मौर्य काल के औद्योगिक स्वरूप की विशेषता इसका शिल्प प्रधान होना है। इस काल में कुम्भकार, रथकार, कम्भार, नापित, कोलिस, स्वर्णकार आदि अनेक औद्योगिक वर्गों का उल्लेख हुआ है। घासकार, मालाकार, गंधिय, नट्टग, तेगिच्छक, तुम्बवीणिय, लासग, हसकर आदि अनेक व्यवसायपरक वर्गों के नाम मिलते हैं, जो अपने-अपने उद्योगों में सिद्धहस्त थे। उस समय विविध शिल्पों में, कुंभकार, लौहकार, सुवर्णकार, पट्टकार, वर्धकी, केश एवं अलंकरण कर्म करने वाले, नापित, मणि, मौक्तिक आदि के आभूषणों के निर्माणकर्ताओं के उल्लेख शिल्प प्रतिष्ठा के सूचक हैं।

औद्योगिक स्वरूप मुख्यतः हस्तकौशल पर आधारित था। हस्तकौशल को शिल्पकर्म कहा गया है। हस्तकौशलों में बढ़ई, लोहार, कुंभकार, स्वर्णकार तथा चर्मकार की गणना की गई है। राजकीय खेतों, जंगलों तथा खानों की पैदावार राज्य के गोदामों (कोष्ठागार) में जमा की जाती थी। इसका उपयोग करने के लिए राज्य को अपने कारखाने चलाने पड़ते थे। इस काल में इस प्रकार के कोष्ठागारों का निर्माण किया जाता था। कोष्ठागारों के निर्माण का कार्य शिल्पकार ही करते थे।

मौर्यकालीन समाज का संगठित एवं नियोजित स्वरूप विद्यमान था जिसके कारण उद्योगों की प्रगति परिलक्षित होती है। उस औद्योगिक व्यवसाय को संचालित करने के लिए श्रेणी, पूग, निगम, श्रेष्ठि इत्यादि का संगठन विद्यमान था जो उद्योगों एवं शिल्प को संगठित एवं नियोजित करके जन साधारण तक औद्योगिक उत्पादन को पहुँचाता था। तत्कालीन समय में सूती, रेशमी, मलमल, ऊनी वस्त्रों आदि का उद्योग विकसित अवस्था में था। इस काल में कपड़ों की बुनाई, कढ़ाई, रंगाई की जाती थी। वस्त्रों पर विविध प्रकार की आकृतियाँ बनायी जाती थी। कसीदाकारी तथा रंगरेजी का व्यवसाय भी उन्नत दशा में था। गरीब अथवा निर्धन लोग मोटे एवं महीन वस्त्रों तथा धन सम्पन्न लोग बारीक एवं रेशमी वस्त्रों का उपयोग करते थे। भेड़, बकरी आदि के बालों से ऊनी वस्त्र एवं कम्बल का निर्माण किया जाता था। कपास एवं रेशम से महीन

धागों का निर्माण किया जाता था। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि वस्त्र उद्योगों के निर्माण का संगठित स्वरूप विद्यमान था तथा नियोजन के द्वारा ही वस्त्रों को जन सामान्य को उपयोगार्थ उपलब्ध कराया जाता था।

मौर्य कालीन अर्थव्यवस्था में धातु उद्योग का पर्याप्त विकास दृष्टिगत होता है। इस काल में सोना, चांदी, ताँबा, सीसा, लोहा, कांसा, पीतल इत्यादि धातुओं के उद्योग-धन्धे विकसित थे। इन धातुओं से स्वर्णभूषण निर्मित किये जाते थे, जिसको स्त्री-पुरुष दोनों धारण करते थे। आभूषणों को निर्मित करने के लिये कारखाने बने हुए थे। लोहा, पीतल, कांसा इत्यादि धातुओं से विभिन्न प्रकार के दैनिक उपयोग के पात्र, उपकरण, औजार, प्रतिमाएं, मूर्तियाँ, चूड़ियाँ इत्यादि बनाये जाते थे। मिश्रित धातुओं के सिक्के, मुहरें एवं पात्र निर्मित किये जाते थे। हीरे, जवाहरात, मोती, मूंगा, मणियाँ, सीप, मुक्ता, नीलम, गोमेद, पुष्पराग, स्फटिक, पद्मराग इत्यादि से सुन्दर एवं बहुमूल्य आभूषण बनाये जाते थे। इसके अतिरिक्त नमक, हाथी-दाँत, चमड़ा, शहद, काष्ठ आदि का शिल्प एवं उद्योग विकसित अवस्था में थे। मौर्यकालीन नगरीय जीवन की जीवन शैली एवं विलासिता में वृद्धि, उद्योग धन्धों के संगठित एवं नियोजित स्वरूप का ही परिणाम प्रतीत होता है।

भारतीय इतिहास में मौर्य काल भारतीय समाजव्यवस्था, अर्थव्यवस्था एवं व्यापारिक गतिविधियों के लिए विशेष महत्वपूर्ण रहा है। इस वंश के शासकों ने अपनी विजयों, अदम्य उत्साह, संगठन, प्रतिभा एवं अनवरत चेष्टाओं द्वारा विशाल साम्राज्य के वाणिज्यिक एवं व्यापारिक गतिविधियों को संगठित एवं नियोजित करके विकसित किया। इस काल में वाणिज्य व्यापार राज्य द्वारा पूर्ण रूप से नियंत्रित था। मौर्य काल में कृषकों, औद्योगिक समूहों, शिल्पियों, व्यापारियों आदि का संगठित स्वरूप विद्यमान था। वाणिज्य-व्यापार श्रेणी संगठन, पूग, निगम, श्रेष्ठि, सार्थ, सार्थवाह इत्यादि व्यापारिक संगठनों एवं समूहों द्वारा संचालित किया जाता था। मौर्यकालीन नगरों में राज्य द्वारा उन व्यापारिक गतिविधियों को सुव्यवस्थित, संचालित एवं नियंत्रित करने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। इस प्रकार मौर्य काल में व्यापार राज्य द्वारा पूर्णतः नियंत्रित था।

मौर्य काल में भारत के आन्तरिक भागों में विविध व्यापारिक केन्द्रों से वस्तुओं का आयात-निर्यात किया जाता था। प्रमुख व्यापारिक केन्द्र राजगृह, पाटलिपुत्र, वाराणसी (काशी), प्रयाग, कौशाम्बी, मथुरा, अयोध्या, वैशाली, श्रावस्ती, चम्पा, ताम्रलिप्ति, भड़ौच, उज्जयिनी, विदिशा, प्रतिष्ठान इत्यादि नगर एवं बन्दरगाह थे जो स्थल एवं जल मार्गों द्वारा एक दूसरे से सम्बद्ध थे। इन नगरों में निरन्तर वाणिकों एवं व्यापारियों का आवागमन होता रहता था

तथापि इन नगरों में परस्पर घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित था। इन नगरों में वणिक स्थल मार्गों से हाथी, घोड़े, खच्चर, रथ, बैलगाड़ी इत्यादि एवं जल मार्गों में चलने वाली नावों, जहाजों आदि की सहायता से अन्य समकालीन नगरों में व्यापारिक लेकर पहुँचते थे तथा अपने व्यापारिक पण्य बेचकर उन नगरों से अन्य व्यापारिक वस्तुएँ खरीदकर वापस लौटते थे। विक्रय करके वे दुगुना लाभ अर्जित करते थे। उन व्यापारिक वस्तुओं को व्यापारीगण विभिन्न केन्द्रों एवं स्थलों पर विक्रय करते थे तथापि कुछ वस्तुओं को विनिमय के द्वारा भी विक्रय करते थे। सामान्यतया वस्तुओं का मूल्य राज्य द्वारा निर्धारित होता था तथा व्यापारियों द्वारा निर्धारित मूल्य से अधिक मूल्य पर बेचने या धोखाधड़ी करने पर दण्ड का भी प्रावधान किया गया था।

तत्कालीन व्यापारिक वस्तुओं में औषधियाँ, घोड़े, शंख, मोती, मणियाँ, हीरा, जवाहिरात, लोहा, लकड़ी, रस्सी, चमड़ा, सूत, छाल, ऊन, खाद्यान्न, अनाज, तेल, घी, क्षार, नमक, गंध, सुगन्धित पदार्थ, कस्तूरी, शाक—सब्जी, गाजर, मूली, शकरकन्द, मछली, मांस, मदिरा, कीमखाव, कवच, हरताल, मनसिल, हिंगुल, गेरू, चन्दन, अगरू, पीपल, कटुक, हाथीदाँत, रेशम, रेशमी धागे, कपास, कम्बल, वस्त्र, काष्ठ, बाँस, मृदभाण्ड, दुपाए एवं चौपाए पशु, पक्षी इत्यादि प्रमुख थीं जिनका विभिन्न व्यापारिक केन्द्रों, बन्दरगाहों, नगरों, स्थलों, हाटों आदि में परस्पर आयात—निर्यात किया जाता था। इन वस्तुओं के

आयात—निर्यात से जन सामान्य को उनकी आवश्यकता की वस्तुएं सुगमता से उनकी बाजारों (हाटों) में प्राप्त हो जाती थीं तथा इन वस्तुओं को एक नगर से दूसरे नगर एवं स्थल में पहुँचाकर व्यापारीगण अधिकाधिक धन अर्जित करते थे। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि मौर्य काल में अन्तर्देशीय व्यापारिक एवं वाणिज्यिक गतिविधियाँ पूर्ण रूप से संगठित, नियोजित एवं राज्य द्वारा नियंत्रित थीं।

मौर्य युग में विभिन्न देशों से वाणिज्यिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित था जो पूर्णतया संगठित एवं नियोजित स्वरूप में प्रतिदर्शित होता है। इस काल में भारत का यूरोपीय देशों, सीरिया, सीरीन, मकदूनिया, यूनान, रोम, मिश्र, फारस, श्रीलंका, सुवर्णभूमि, सुवर्णद्वीप, ईरान, इराक, वैक्ट्रिया, चीन, अफ्रीकी देशों, काबुल, कंधार, हेरात, बलूचिस्तान इत्यादि देशों से घनिष्ठ व्यापारिक एवं वाणिज्यिक सम्बन्ध स्थापित था। भारतीय व्यापार सार्थ, सार्थवाह, श्रेणी, निगम, श्रेष्ठि इत्यादि अपने संगठन एवं समूह द्वारा व्यापारिक गतिविधियाँ अन्य देशों में संचालित करते थे। सुरक्षात्मक दृष्टि से व्यापारीगण सार्थ एवं काफिले में चलते थे तथा रात्रि विश्राम भी करते थे।

इस काल में विदेशों से जिन वस्तुओं का व्यापार (आयात—निर्यात) किया जाता था उनमें चीनी रेशम, रेशमी वस्त्र,

मलमल, कौलेय, कार्दमिक, मणियाँ, मुक्ता, मोती, कम्बल, स्निग्ध एवं पीले चन्दन, मूंगा, बांस, सूती वस्त्र, हाथीदाँत एवं इससे निर्मित वस्तुएं, कछुए की खोपड़ी, रंग, नील, जटामांसी, टीन, बहुमूल्य लकड़ियाँ, सोना, सुगन्धित पदार्थ, गरम मसाले इत्यादि वस्तुएं प्रमुख थीं।

मौर्य युग में व्यापारीगण भारतीय नगरों एवं व्यापारिक पण्य उपलब्धता वाले क्षेत्रों से अपने पण्य लेकर विविध देशों को जाते थे। वे विदेशों में जाने के लिए स्थल एवं जल मार्गों का उपयोग करते थे। स्थल मार्गों द्वारा बैल, घोड़े, रथ, खच्चर, गधों, बैलगाड़ी इत्यादि की सहायता से अन्य नगरों में व्यापारिक वस्तुएं लेकर जाते थे। कुछ व्यापारी स्थल एवं नदी मार्गों में चलने वाली नावों एवं जहाजों द्वारा पण्य के साथ बन्दरगाहों एवं द्रोणमुखों पर पहुँचते थे वहाँ से वे सामुद्रिक मार्गों द्वारा नौकाओं, पोतों एवं जहाजों की सहायता से विभिन्न देशों को व्यापारिक वस्तुएं लेकर जाते थे। वे व्यापारीगण, सार्थ एवं सार्थवाह विदेशों में व्यापारिक वस्तुओं का विक्रय करते थे तथा उन क्षेत्रों एवं नगरों की प्रसिद्ध वस्तुएं, जिनकी भारत में मांग थी, स्वदेश ले आते थे, जिनको भारतीय व्यापारिक मण्डियों, बाजारों, हाटों एवं व्यापारिक वीथियों में बेचते थे। इस प्रकार की व्यापारिक गतिविधियाँ संचालित करके जन सामान्य को उनकी उपयोग की आवश्यक वस्तुएं सुलभ कराते थे तथा वे व्यापारीगण स्वयं

अधिकाधिक लाभ अर्जित करते थे जिससे मौर्यकालीन समाज पोषित एवं लाभान्वित होता था।

उपर्युक्त व्यापारिक एवं वाणिज्यिक गतिविधियों को संचालित करने में उन व्यापारिक समूहों एवं संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी जिनमें गण, पूग, निगम, श्रेष्ठि, श्रेणी, सार्थ, सार्थवाह इत्यादि सम्मिलित थे। सम्भव है ये व्यापारिक समूह संयुक्त एवं सहयोगात्मक रूप से आधुनिक व्यापारिक समूहों एवं संगठनों की भाँति कार्य करते रहे होंगे। वे अपने व्यापारिक एवं वाणिज्यिक गतिविधियों का संचालन योजनाबद्ध रूप से संगठित एवं नियोजित ढंग से अवश्य ही सम्पन्न करते रहे होंगे।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि मौर्यकालीन वाणिज्यिक एवं व्यापारिक प्रगति तथा तत्कालीन समाज को सुखी एवं सम्पन्न बनाने हेतु उपयोगी वस्तुएं उपलब्ध कराने में संगठित एवं नियोजित व्यापारिक समूह की महत्वपूर्ण भूमिका प्रतिबिम्बित होती है। जिसके परिणाम स्वरूप मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होती रही तथा तत्कालीन समाज का पोषण होता रहा। फलतः मौर्य युगीन समाज सुखी एवं सम्पन्न बना रहा। इस प्रकार मौर्य काल में आर्थिक संगठन एवं नियोजन की वैज्ञानिक पद्धति की स्थापना हुई।